आसन और प्राणायाम

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

पुनरावृत्ति सन् २००६ मूल्य : 5.००) रुपया

प्राणायाम संबंधी अनुभव

(डॉ० शोजाबुरो ओटेव)

जब मैं पाँच वर्ष का था तभी से मुझे बीमारियों ने घेर लिया था। आरंभ में मेरी बाँई जाँघ में अस्थि-शोथ हुआ, अस्पताल में चीर-फाड़ हुई जिसमें बेकाम हड्डी के तीन टुकड़े निकाले गए। इसके बाद मैं बहुत ही दुर्बल, पीला और रक्तहीन हो गया, डॉक्टरों ने मेरी कम चौड़ी और सिकुड़ी हुई छाती को देखकर संदेह प्रकट किया कि कहीं तपेदिक का शिकार न हो जाऊँ। वैसे मैं इतना दुर्बल और रुग्ण आकृति का हो गया था कि हर कोई मुझे तपेदिक का रोगी समझता था।

अनेक उपचारों के बाद भी जब किसी प्रकार मेरे स्वास्थ्य में कोई उन्नति न हुई, तो निराश होकर मैं अपनी मृत्यु की घड़ियाँ गिनने लगा। इन्हीं दिनों मैंने एक व्याख्यान में सुना कि प्राणायाम द्वारा अधिक ऑक्सीजन प्राप्त करके फेफड़ों को मजबूत और स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है। उसी दिन से मैंने प्राणायाम करना आरंभ कर दिया। सोते-जागते सदा मुझे प्राणायाम की ही धुन लगी रहती। इससे मेरे शरीर की खूब उन्नति हुई। एक वर्ष के भीतर ही छाती का घेरा ४ इंच अधिक बढ़ गया और ऊँचाई भी करीब-करीब चार इंच ही बढ़ी। इसी से अंदाज लगाया जा सकता है कि मेरा स्वास्थ्य किस तेजी से आगे बढ़ा? डॉक्टरों से जाँच कराई तो उन्होंने बताया कि अब फेफड़े इतने मजबूत हो गए हैं कि तपेदिक होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। २ अगस्त १९०५ ई० से लेकर १८ जुलाई सन् १९०७ ई० तक के दो वर्षों के भीतर मेरा वजन करीब २२ पौंड बढ़ गया। तब से मैं नित्य प्राणायाम करता हूँ और सदा स्वस्थ रहता हूँ।

मैं प्राणायाम का कट्टर भक्त हूँ। मेरा विश्वास है कि उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए प्राणायाम एक संजीवनी विद्या है।

आसन और प्राणायाम

आसन क्यों ? और कैसे ?

यम-नियमों द्वारा अंत:चेतना की सफाई के साथ-साथ शरीर और मन को बलवान बनाने की आवश्यकता है। चिकित्सा द्वारा शरीर में से बीमारी को हटा देने के पश्चात रोगी को अच्छे भोजन की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। फूटे हुए बरतन के छेद बंद कर देने के उपरांत ही उसमें जल आदि भर देते हैं। खेती को जंगली पशुओं से बचाए रखना आवश्यक है, पर इतने से ही काम नहीं चल सकता। अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए खेत में खाद देना और सींचना भी जरूरी है। योग-साधना ऐसी ही खेती है, जिसे यम-नियम द्वारा हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, लोभ, मलिनता, तृष्णा, आलस्य, अज्ञान सरीखे दस जंगली पशुओं से रक्षा करनी होती है और आसनों का खाद तथा प्राणायाम का पानी देना होता है तभी संतोषजनक प्रागति होती है।

आसनों की बाह्य रूपरेखा व्यायाम से मिलती-जुलती है। जिस प्रकार दंड-बैठक, ड्रिल आदि से कसरत होती है, वैसी ही क्रियापद्धति आसनों में देखी जाती है। स्थूल दृष्टि से देखने में आसनों की परिपाटी व्यायाम की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनाई गई प्रतीत होती है। अतएव यह प्रश्न सहज ही उठ खड़ा होता है कि जो लोग पहलवानी करते हैं, दंड-बैठक करते हैं, हॉकी-फुटबाल खेलते हैं या कड़ी मशक्कत करके जीविकोपार्जन करते हैं, उनके लिए आसनों की क्या आवश्यकता है? व्यायाम तो अन्न, जल, निद्रा की भाँति साधारण दैनिक क्रिया है। जब खान-पान, शयन, स्नान आदि की चर्चा नहीं की गई है, तो व्यायाम में ही ऐसी क्या विशेषता थी, जो उसको योग-साधना में प्रमुख स्थान दिया गया?

विवेचना के पश्चात विदित हुआ कि आसनों का गुप्त आध्यात्मिक महत्त्व है। इन क्रियाओं से उन सूर्य चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहतचक्र आदि सूक्ष्म मर्म ग्रंथियों का जागरण होता है और कई मानसिक शक्तियों का असाधारण रूप से विकास होने लगता है, इसके साथ-साथ उच्च कोटि का शारीरिक व्यायाम तो यह है ही। आसनों के अतिरिक्त कोई व्यायाम ऐसा नहीं है, जिससे शरीर के सभी अंगों की यथोचित कसरत हो जाए। दंड-बैठक आदि में हाथ-पाँव को अधिक मेहनत करनी पड़ती है। कभी-कभी यह मेहनत इतनी अधिक हो जाती है कि उन स्थानों के भेद-तंतु फट जाते हैं, जिससे वहाँ के अंग कठोर, निर्जीव तथा बेडौल हो जाते हैं। जितनी फुरती और चैतन्यता चाहिए, उतनी नहीं रहती। इस प्रकार एक ओर तो किन्हीं खास अंगों को आवश्यकता से अधिक कार्य करना पड़ता है और दूसरी ओर कुछ अंग बिना कसरत के ही छूट जाते हैं, इसलिए व्यायाम, पहलवानी और मजबूती की दृष्टि से अच्छे होते हुए भी सर्वांगपूर्ण स्वस्थता की दृष्टि से निकम्मे ही ठहरते हैं। यह कमी आसनों में नहीं है। उनका विधान इस प्रकार का है कि प्राय: सभी अंगों का यथोचित मात्रा में व्यायाम हो जाता है।

पहलवानों के लिए राजसिक और अधिक मात्रा में आहार की आवश्यकता है। जिनको पहलवानों के निकट रहने का अवसर मिला है, वे जानते हैं कि कितनी अधिक मात्रा में और कितने बढ़िया भोजन की उन्हें आवश्यकता होती है। योगाभ्यास में यह सब वांछनीय नहीं। राजसिक आहार से वृत्तियाँ भी राजसिक बनती हैं। योगी को सात्विक आहार की आवश्यकता होती है, ताकि उससे उत्पन्न हुआ रस सात्विकता को उत्पन्न करे। सात्विक आहार में उतनी ताकत नहीं होती है, जितनी कि राजसिक में होती है। दूसरे अध्यात्म-मार्ग में स्वल्पाहार की प्रधानता है। पहलवानों को उससे तिगुनी-चौगुनी खुराक चाहिए, इसलिए भी योगसाधकों के लिए अन्य व्यायामों की अपेक्षा आसन ही अधिक उपयोगी

बैठते हैं, इनमें इतनी शक्ति खरच नहीं होती, जिसकी पूर्ति के लिए राजसिक आहार को अधिक मात्रा में लेने की आवश्यकता पड़े।

सभी मनुष्यों की शरीर रचना ऐसी नहीं होती कि वे कड़े व्यायामों का लाभ उठा सकें। जिनकी शक्तियाँ मस्तिष्क में होकर खरच होती रहती हैं, ऐसे बुद्धिजीवी लोग आमतौर से कमजोर शरीर के होते हैं। दो व्यक्तियों के साझे की एक रोटी हो और उसमें से एक अधिक खा जाए, तो दूसरे को स्वभावत: कुछ भूखा रहना पड़ेगा, यही बात मानसिक कार्य करने वालों के संबंध में है। उनके शरीर को कुछ निर्बल रहना ही पड़ता है। इस युग में अशुद्ध, मिलावटी और छोटे दर्जे की खाद्य सामग्री के ऊपर आम जनता को निर्वाह करना पड़ता है। बाल-विवाह, कुसंग, अश्लील साहित्य, सिनेमा आदि के कुप्रभावों के कारण तथा नाना प्रकार की सांसारिक, शारीरिक, मानसिक आधि-व्याधियों के कारण सर्वसाधारण का स्वास्थ्य बहुत ही गिरे दर्जे का हो गया है। कई व्यक्ति स्वास्थ्य सुधार के लिए व्यायाम आरंभ करते हैं, पर उन्हें यह बहुत ही असुविधाजनक होता है। थोड़े-से दंड-बैठक करने से उनकी नसें दुखने लगती हैं, देह में दरद होने लगता है, किसी प्रकार चार-छह दिन क्रम जारी रखते हैं, पर उनकी असुविधाएँ बढ़ती जाती हैं। जिनकी जीवनीशक्ति इतनी अल्प है कि उससे दैनिक कार्य ही मुश्किल से चल पाते हैं, तो फिर व्यायाम को कौन बरदाश्त करे?

फैशन, टीप-टॉप, सभ्यता, नकलीपन, वैज्ञानिक ऐय्याशी और मिथ्या ज्ञान ने हमारे सार्वजनिक स्वास्थ्य को बुरी तरह खा डाला है। चमकीली पोशाक में लिपटी हुई रोगग्रस्त ठठरियाँ इधर-उधर चलती-डोलती दिखाई पड़ती हैं। इनमें से कितने ऐसे हैं, जिनको कठोर व्यायाम की, कुश्ती लड़ने, पहलवानी करने या मुगदर हिलाने की सलाह दी जा सकती है। व्यायाम की अनिवार्य आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता, वह उतना ही जरूरी है, जितना खाना और सोना। इन परिस्थितियों में वह ओषधि जो रोगियों के लिए उपयोगी थी सर्वसाधारण के लिए भी सर्वश्रेष्ठ बन गई है।

अमृतधारा हैजे को रोकने में अच्छा काम करता है, पर बिच्छू के काटे पर भी उसका आश्चर्यजनक फल होता है। योग-साधकों को आसनों से अपनी स्वास्थ्य-रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है, पर आज की अयोगी जनता के लिए भी आसनों का व्यायाम आमतौर से बहुत ही उपयोगी और हितकर होगा। इस प्रकार इस युग का सर्वसुलभ, सर्वोपयोगी सर्वश्रेष्ठ और सार्वजनिक व्यायाम आसन ही हो सकता है।

हमारे पूजनीय पूर्वजों ने प्रकृति के सूक्ष्म नियमों का बारीकी के साथ निरीक्षण करके आसनों की रचना की है। अनेक पशु-पक्षी प्रकृति की प्रेरणा से अपनी चैतन्यता को बढ़ाने के लिए एक विशेष प्रकार से अंग-प्रत्यंगों को ऐंठते-मरोड़ते या तानते हैं। कुत्ता जब सोकर उठता है, तो पाँवों को जमाकर धड़ को पीछे की ओर तानता है और फिर आगे की ओर हो जाता है। बिल्ली चारों पाँवों को इकट्ठा करके धड़ को ऊपर उठाती है। पशु-पक्षियों की इन विभिन्न व्यायाम क्रियाओं का निरीक्षण करके उन्हीं के नाम पर आसनों के नाम रखे गए हैं। जैसे—मयूरासन, कुक्कुटासन, मत्स्यासन, शलभासन, उष्ट्रासन, विडालासन, सर्पासन आदि। ये प्राणी प्रकृति माता का आदेश सुनते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं। प्रकृति ने जीवन-रक्षा और निरोगिता की शिक्षा हर एक प्राणी को दे रखी है। आसनों से स्नायुओं का खिंचाव होता है, जिससे उनका विकास होता है, उनमें दृढ़ता आती है और रक्त-प्रवाह शुद्ध हो जाता है। इससे शरीर की सुस्ती दूर हो जाती है, चैतन्यता आकर किसी भी कार्य में उत्साह होता है।

साधारणतः व्यायाम का उद्देश्य शरीर को बलवान बनाना है। परिश्रम करने से मांसपेशियाँ, पट्ठे, नाड़ी संस्थान, मज्जा तंतु मजबूत होते हैं, उनमें दृढ़ता और समता बढ़ती है। आसनों में यह गुण तो है ही साथ में चैतन्यता का लाभ विशेष है। सुस्ती दूर होकर स्फूर्ति, उत्साह, सजीवता, प्रफुल्लता का संचार खासतौर से होता है, काम में मन लगता है, देह हलकी रहती है, सुस्ती, भारीपन और जी

उचटने की शिकायतों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है। जो लोग जीवन-निर्वाह के लिए थका देने वाला कठोर परिश्रम करते हैं या अन्यान्य व्यायाम पद्धतियों को अपनाए हुए हैं, उन्हें भी आसनों की आवश्यकता है।

आसनों के लिए प्रात:काल का समय सबसे श्रेष्ठ है। ब्राह्म-मुहूर्त में नित्यकर्म से निवृत्त होकर आसनों के लिए तैयार होना चाहिए। यदि स्नान सबेरे ही करना हो, तो आसनों से पहले कर लेना चाहिए, अन्यथा उसके बाद आध घंटे तक ठहरना चाहिए, जब तक कि शरीर की बढ़ी हुई गरमी शांत न हो जाए। समतल भूमि पर चटाई बिछाकर आसनों के लिए बैठना चाहिए। हलकी बनियान और ढीला जांघिया शरीर पर रहना पर्याप्त है, अधिक और चुस्त कपड़े पहने रहने से एक तो अंगों के संचालन में बाधा पड़ती है, दूसरे उस समय शरीर से निकलने वाली गंदी वायु के बाहर जाने और उसके स्थान पर नवीन स्वच्छ वायु के आने में बाधा उपस्थित होती है। अतएव यही उचित है कि लज्जा-निवारण के लिए जांघिया और हवा की अनावश्यक तेजी तथा सरदी-गरमी से छाती को बचाने के लिए बनियान पहन रखी जाए।

आसनों को तीन श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है। (१) खड़े होकर किए जाने वाले, (२) बैठकर किए जाने वाले, (३) लेटकर किए जाने वाले। खड़े होकर किए जाने वाले आसनों में हाथ-पैर और कमर का परिश्रम अधिक होता है। बैठकर किए जाने वाले आसनों में पीठ, गरदन, कंधे अधिक श्रम करते हैं और लेटकर किए जाने वाले आसनों में पेट, छाती, गले को अधिक मेहनत करनी पड़ती है। देखना चाहिए कि हमारे दैनिक कार्यक्रम में किन अंगों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है और किनको कम। जिन अंगों को अधिक कार्य करना पड़ता हो, उनके लिए व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता नहीं है, जितनी कि कम कार्य करने वाले अंगों के लिए है। यों तो हर एक आसन में हर एक अंग को कुछ-न-कुछ मेहनत करनी पड़ती है, इसलिए छूट कोई भी

नहीं पाता, परंतु प्रश्न अधिकता और न्यूनता का है। जो अंग कम काम करता है या अधिक निर्बल है, उसे सतेज एवं पुष्ट करने की विशेष आवश्यकता है। मध्यम मार्ग भी यही है कि अधिक कार्य करने वाले को आराम दिया जाए, अन्यथा अधिक श्रम की गरमी से वह गलने और विकृत होने लगेगा, इसी प्रकार कम कार्य करने वाले से परिश्रम कराया जाए, वरना वह मंद, क्रियाहीन, निकम्मा और कमजोर होकर बीमारियों का घर बन जाएगा।

अनुभवियों का कथन है कि कमजोर, वृद्ध और बुद्धिजीवी लोगों को लेटकर किए जाने वाले आसन अधिक उपयोगी हैं। जिनके उदर तथा वक्ष में निर्बलता है, भूख कम लगती है, दस्त साफ नहीं होता, कफ, खाँसी, जुकाम आदि की शिकायत बनी रहती है, उन्हें पेट पर दबाव डालने वाले आसन खासतौर से करने चाहिए। खड़े और बैठकर की जाने वाली क्रियाएँ उनके लिए गौण हैं, उनमें कम समय लगाया जाए और थोड़ा श्रम दिया जाए तो भी ठीक है।

आसनों संबंधी अनेक भारतीय और विदेशी पुस्तकें हमने पढ़ी हैं तथा इस विषय के सैकड़ों अनुभवी व्यक्तियों से काफी वार्तालाप किया है। (१) आसन कितने हैं ? (२) उनके क्या-क्या नाम हैं ? (३) कौन आसन किसके लिए उपयोगी है ? इन तीन प्रश्नों पर सबके मत हमें एक-दूसरे से भिन्न और विपरीत मिले हैं। एक क्रिया को अमुक पुस्तक में अमुक नाम से बताया गया है और उसके अमुक लाभ बताए गए हैं किंतु दूसरी पुस्तक उसका नाम और गुण दूसरा ही बताती है। इसी प्रकार अनुभवी व्यक्तियों के अनुभव एक-दूसरे से विपरीत हैं। संख्या के बारे में कुछ ठिकाना नहीं। किसी में एक सौ बत्तीस उनकी संख्या है। एक ही नाम के आसन की क्रियाएँ अलग-अलग तरह से पाई जाती हैं, कई-कई भेद-उपभेद भी मिलते हैं। इस प्रकार हमारी गणना में ८७३ भारतीय आसन प्राप्त हुए हैं। संभव है कि यह गणना अधूरी हो और कोई दूसरे सज्जन इससे भी अधिक ढूँढ़ सकें। यूरोप, अमेरिका तथा

एशिया के अन्यान्य देशों के आसन करीब साढ़े छह हजार तक पहुँचते हैं, इसके अतिरिक्त जो और भी होंगे, उनके बारे में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता।

विचार करने से प्रतीत होता है कि कसरत की कोई विधि पत्थर की लकीर नहीं है। संभव है शुरू-शुरू में दो-चार ही आसन रहे हों, पीछे अनुभव द्वारा उनकी संख्या बढ़ती गई और चौरासी हो गई। चौरासी आसन प्रसिद्ध हैं, पर अब तो अनुभव ने उनकी संख्या इससे भी अनेक गुनी कर दी है और आगे-आगे बढ़ती ही जाएगी। मानव शरीरों की बनावट एक-सी नहीं होती, उनमें फरक पाया जाता है, इस फरक के आधार पर आहार और विहार की अनुकूलता में भी अंतर आता है। एक आदमी को उड़द की दाल बलवर्द्धक और स्वादिष्ट प्रतीत होती है, दूसरे को वह अरुचिकर तथा पेट फुला देने वाली साबित होती है। एक व्यक्ति को सरदी सह्य होती है, गरमी नहीं, किंतु दूसरा गरमी में सुखी रहता है और सरदी में कष्ट अनुभव करता है। यही बात व्यायामों के संबंध में है, किसी की नसें इतनी कड़ी होती हैं कि वे अमुक मर्यादा तक ही मुड़ सकती हैं, किंतु किसी का शरीर बहुत लचीला होता है, उसे काफी झुकाया या मोड़ा जा सकता है। जिन आसनों में शरीर को अधिक मोड़ने की आवश्यकता है, वे लचकीली बनावट के लोगों के लिए सुलभ हैं, किंतु जिनकी नसें कड़ी एवं कठोर हैं, उनके लिए दूसरी किस्म के आसन हितकर होंगे। इस भिन्न प्रकृति के आधार पर अनुभवियों को नए-नए आसनों की रचना करनी होती है।

किस व्यक्ति के लिए कौन-सा आसन हितकर होगा? इसका निर्णय करने से पूर्व उसकी शरीर-रचना, प्रकृति, दिनचर्या, स्वास्थ्य आदि का निरीक्षण करना होता है। अमुक व्यक्ति को कौन-सा आसन करना अधिक हितकर होगा। इसका ठीक-ठीक निर्णय क्षणमात्र में कोई विरले ही अनुभवी कर सकते हैं। पर ऐसे अनुभवियों से हर एक का संपर्क होना सुलभ नहीं, ऐसी दशा में सबसे अच्छा मार्ग यह है कि अभ्यासी अपने अनुभव द्वारा अपना मार्ग-निर्धारण

कि जितना अच्छा चुनाव अपने लिए खुद किया जा सकता है, उतना दूसरा कोई नहीं कर सकता। कारण यह है कि अपने बारे में जितनी जानकारी खुद की होती है, उतनी दूसरों को नहीं होती।

जिन्हें पुराने आसनों में से कोई अनुकूल न पड़ता हो या उनकी अधिक जानकारी न हो, वे जो अपनी बुद्धि से नए आसनों का आविष्कार कर सकते हैं। आसन दो प्रकार के हैं, एक वे जिनका संबंध व्यायाम से है; दूसरे वे जो ध्यानयोग की साधना के लिए सुखपूर्वक अधिक समय तक बैठे रहने के लिए हैं। ध्यानयोग वाले आसनों की चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ तो व्यायाम संबंधी प्रक्रियाओं की ही चर्चा हो रही है। इस प्रकार के आसनों का सिद्धांत यह है कि एक साधारण स्थिति में लेटना, बैठन या खड़ा होना चाहिए। फिर अमुक अंगों को अमुक मर्यादा तक धीरे-धीरे तानते हुए ले जाना चाहिए, मर्यादा पर पहुँचकर कुछ देर ठहरना चाहिए, तदुपरांत धीरे-धीरे पूर्व क्रिया को वापस लौटाते हुए साधारण स्थिति पर पहुँच जाना चाहिए। कुछ देर साधारण स्थिति पर रहकर पुनः उसी प्रक्रिया को दोहराना चाहिए। इस प्रकार एक आसन को कई बार करना चाहिए।

ध्यान रखने की बात यह है कि झटके से किसी आसन को न करना चाहिए। धीरे-धीरे एक समान गति से अंगों को एक से तनाव के साथ नियत मर्यादा तक ले जाना चाहिए और फिर कुछ ठहरकर जब वापस लौटने लगे, तो उसी प्रकार धीरे-धीरे समान गति और समान तनाव के साथ लौटना चाहिए जैसे कि आसन को आरंभ करते समय था। दबाव की जो अंतिम मर्यादा नियत की गई है, आरंभ में उसे कुछ नीचा ही रखना चाहिए और फिर धीरे-धीरे

वृद्धि करनी चाहिए। प्रारंभ में जिस प्रक्रिया को चार बार किया जाता है, धीरे-धीरे उसे पाँच-छह, आठ-दस-बीस आदि तक सुविधानुसार बढ़ाना चाहिए। प्रारंभ में यदि दस मिनट अभ्यास किया जाए, तो उसे धीरे-धीरे दो-चार मिनट बढ़ाते हुए घंटे-आध घंटे तक ले जाना चाहिए। प्रारंभ में ही अधिक समय लगाना उचित नहीं। जिससे देह में दरद होने लगे और दूसरे ही दिन अभ्यास को कम करने या बंद करने के लिए विवश होना पड़े। यथाक्रम आगे बढ़ना ही उचित है जिससे यात्रा निरंतर आगे बढ़ती चले। रोगी और गर्भिणी स्त्रियों को व्यायाम का निषेध किया गया है। यह प्रतिबंध कठोर आसनों के लिए है। पीठ के बल लेटकर धीरे-धीरे अंग परिचालन करके हलके आसनों का उपयोग वे भी कर सकते हैं अपनी शक्ति और आवश्यकता का ध्यान रखते हुए इस पद्धति को अपनाना कभी हानिप्रद नहीं हो सकता।

बैठने के कई आसन ऐसे हैं, जिनमें एक प्रकार का बंध बँध जाता है। अमुक अंग से अमुक अंग को जकड़कर इकट्ठा कर दिया जाता है और कुछ देर उसी दशा में जकड़े रहना पड़ता है। मत्स्येंद्रासन, जानु शिरासन, द्विहस्त, भुजासन, वातायनासन, पश्चिमोत्तासन, कुक्कुटासन, गर्भासन जैसे आसन इसी प्रकार के हैं। इन आसनों पर अधिक देर न बैठना चाहिए। अनुभव के पश्चात इनकी विशेष उपयोगिता साबित नहीं होती। किन्हीं खास अंगों पर तनाव तो इनसे पड़ता है, पर पेशियों का आकुंचन-प्रसारण तथा रक्त की चाल का तीव्र होना इनमें नहीं होता, कोई अंग अकड़ गए हों, नसों में कठोरता आ गई हो, तो उन्हें तानने के लिए इनका उपयोग है, यह विशेष परिस्थिति के आसन हैं, साधारण अवस्था के नहीं।

लेटकर किए जाने वाले आसनों में सर्वांगासन, मयूरासन, मत्स्यासन, दंडासन, सर्पासन, धनुरासन आदि की उपयोगिता उदर के अंग-प्रत्यंगों के संचालन के लिए है। इनसे पेट, छाती

करे। आसनों के चित्रों वाली दर्जनों पुस्तकें और तसवीरें बाजार में बिकती हैं, इनमें से दो-चार खरीद लेनी चाहिए और देखना चाहिए कि इनमें से कौन-सा आसन हमारी शरीर-रचना और आवश्यकता के अनुकूल पड़ता है। किसी आसन का प्रयोग करते समय बारीकी के साथ यह देखना चाहिए कि इसका दबाव किन-किन अंगों पर कितना-कितना पड़ता है। एक-दो दिन के प्रयोग से उसके द्वारा होने वाले नफा-नुकसान का भी आभास मिलने लगता है, उन सब बातों को ध्यान में रखते हुए किन्हीं उपयोगी आसनों को अपने लिए चुनना चाहिए, उनकी संख्या चार-पाँच से अधिक न होनी चाहिए। नित्य आप दस प्रकार के आसन लगाएँ—इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। पेट, छाती, पीठ, कमर, कंधे, गरदन, हाथ, पैरों का यथोचित परिश्रम जिनमें हो जाए, ऐसे चार-पाँच आसनों से भी काम चल सकता है।

आसनों की अनेक किस्में इसलिए नहीं हैं कि इनमें से हर एक का अभ्यास करना चाहिए, वरन इसलिए है कि इनमें से जो जिसे अनुकूल पड़ें, वह उन्हें काम में ले लें। बाजार की दुकान पर सैकड़ों किस्म के कपड़े होते हैं, उनमें आपको जो रुचे, उसे खरीद सकते हैं, यह जरूरी नहीं कि दुकान के सब कपड़े आपको पहनने ही पड़ें, जो कपड़ा आपको अच्छा जँचता है। संभव है कि वह दूसरों को बुरा लगे और यह भी संभव है कि दूसरे लोग जिसे बढ़िया समझते हैं, वह आपको रद्दी प्रतीत हो। आसनों के बारे में भी यही बात है। शीर्षासन की तारीफ सब ओर सुनी जाती है। बहुत लोगों को वह बहुत लाभदायक होता है, परंतु हमने ऐसे लोगों को देखा है, कि शीर्षासन से उनके मस्तिष्क में अत्यधिक रक्त पहुँच जाने के कारण गरमी बढ़ गई और वे पागल हो गए, कई को सिरदर्द, चिड़चिड़ापन, नेत्रों में जलन आदि का शिकार हो जाना

के लोगों के लिए, कमजोरों के लिए, छिटपुट बीमारी की अवस्था में यह उत्तम हैं। इनमें अधिक दबाव नहीं पड़ता और जितनी शक्ति हो, उसी के अनुसार धीरे-धीरे इन्हें आसानी के साथ किया जा सकता है।

खड़े होकर हस्त पादांगुष्टासन, गरुड़ासन, वातायनासन, पादहस्तासन, उत्कटासन, ताड़ासन आदि आसन किए जाते हैं। इनसे पीठ, कंधे, रीढ़, जाँघ तथा भुजाओं पर जोर पड़ता है और इन अंगों की भली प्रकार कसरत हो जाती है। खड़े होकर किए जाने वाले आसनों में अपेक्षाकृत शरीर पर अधिक श्रम पड़ता है। जिनका शरीर अच्छे स्वास्थ्य वाला है, उनके लिए यह उपयोगी रहते हैं।

वैसे तो हर एक आसन से शरीर के हर अंग पर थोड़ा-बहुत बल पड़ता है, पर अधिक मात्रा में उनका प्रभाव उपर्युक्त प्रकार से ही होता है। इस पुस्तक में दिए हुए आसनों का पाठक कुछ परिचय प्राप्त कर सकते हैं और अपनी सुविधा तथा शरीर-रचना के अनुसार जो उपयोगी पड़ें, उन्हें अपने लिए चुन सकते हैं। साधारणत: बैठकर किए जाने वाले आसनों में पश्चिमोत्तासन तथा बद्ध पद्मासन, लेटकर किए जाने वालों में सर्वांगासन, मयूरासन, सर्पासन, धनुरासन और खड़े होकर किए जाने वालों में ताड़ासन, पाद-हस्तासन उत्कटासन उपयोगी हैं। ये नौ आसन प्रतिदिन करने योग्य हैं और अधिकांश व्यक्तियों के लिए उपयोगी पड़ते हैं। जो उपयोगी न पड़े, उसे छोड़ देना चाहिए और इसके अतिरिक्त भी हजारों प्रचलित आसनों में से कोई हितकर प्रतीत हो तो उसे अपना लेना चाहिए।

शीर्षासन, जिसे विपरीतकरणी मुद्रा भी कहते हैं, की उपयोगिता के संबंध में बहुत सावधानी से परीक्षण करने की आवश्यकता है। पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में शीर्षासन की तारीफ में बड़े-बड़े लंबे-चौड़े लेख निकलते हैं। यह गंभीरतापूर्वक देखना चाहिए कि कितने लेखक इनमें से कलम-कौशल के धनी हैं और कितनों को वास्तविक अनुभव है। आजकल लोगों के स्वास्थ्य बहुत ही निर्बल देखे जाते हैं, नाड़ियों की धारणा शक्ति स्वल्प होती है और उनमें

रक्त बहुत न्यून मात्रा में बहता है। ऐसे लोग यदि शीर्षासन पर अधिक जोर देंगे, तो शरीर का रक्त अनावश्यक मात्रा में मस्तिष्क में पहुँचकर दिमाग के निर्बल तंतुओं में अधिक उत्तेजना उत्पन्न कर सकता है, जिससे अनिद्रा, सिरदरद, क्रोध, नेत्रों में सुरखी आदि उपद्रव खड़े हो सकते हैं। हमारे अनुभव में कई ऐसे साधक आए हैं, जिन्हें शीर्षासन के कारण उपर्युक्त प्रकार की हानि उठानी पड़ी है। इसलिए हम अपने पाठकों को सावधान करते हैं कि किसी अनुभव-हीन व्यक्ति के कहने या किसी लेख के पढ़ने मात्र से प्रभावित होकर शीर्षासन साधना की उतावली न करें। बलवान व्यक्तियों के लिए पूर्वकाल में जो आसन बहुत ही लाभदायक थे, संभव है कि आज की परिस्थितियों में निर्बल व्यक्तियों को लाभप्रद न बैठें। हमारे अनुभव में सर्वांगासन की उपयोगिता बहुत है, इसमें शीर्षासन की बहुत कुछ आवश्यकता पूरी हो जाती है। वैसे हम शीर्षासन के विरोधी नहीं है, हमारी सम्मति तो इतनी ही है कि इस अभ्यास को बहुत्त थोड़ी मात्रा में धीरे-धीरे आंरभ करना चाहिए और यदि वह अपनी प्रकृति के अनुकूल जँचे तो ही उसके लिए आगे प्रयत्न जारी रखना चाहिए। सूर्य नमस्कार की व्यायाम पद्धति भी बहुत उपयोगी हो रही है, जिनसे यह बन पड़े, अवश्य अपनावें।

अन्य व्यायाम

पिछले पृष्ठों में हम बता चुके हैं कि आसनों का प्रधान उद्देश्य शारीरिक व्यायाम है। साथ-साथ कुछ योग-चक्रों का जो जागरण हो जाता है, वह अतिरिक्त लाभ है। अन्य असंख्य प्रकार के व्यायाम, खेल आजकल प्रचलित हैं, इनमें भी उपर्युक्त दोनों लाभ न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होते ही हैं। जिन्हें आसनों में रुचि न हो, वरन अन्य प्रकार के व्यायामों में दिलचस्पी हो, वे उस मार्ग से भी शरीर को सुदृढ़ बनाने के मूल उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं। नीचे कुछ ऐसे नियमों का उल्लेख किया जाता है, जो आसन या अन्य प्रकार के व्यायाम करने वालों के लिए समान रूप से उपयोगी हैं।

(१) दिवाली से लेकर होली तक के साढ़े चार महीने कड़े व्यायामों के लिए बहुत उपयुक्त है। इन दिनों खूब कसरत करनी चाहिए। गरमी और वर्षा के दिनों में हलका व्यायाम करना चाहिए। इन ऋतुओं में जाड़े की अपेक्षा आधा व्यायाम ही पर्याप्त है।

(२) व्यायाम के लिए सबेरे का समय सबसे अच्छा है। सूर्योदय तक व्यायाम से निश्चित हो जाना चाहिए, अधिक-से-अधिक एक घंटा दिन निकले तक समय लगाना चाहिए। साधारणत: एक वक्त ही व्यायाम करना काफी है। यदि शाम को भी करना हो तो वह बहुत ही हलका और थोड़ा होना चाहिए।

(३) बालकों के लिए खेल-कूद, दौड़ आदि सरल, तरुणों को दंड-बैठक, सूर्य नमस्कार, डंबल, मुगदर आदि कठिन और वृद्धों को टहलना आसन आदि हलके व्यायाम करने चाहिए।

(४) भोजन के उपरांत व्यायाम करना निषिद्ध है। जब पेट पच गया हो तभी कसरत करनी चाहिए।

(५) जब बीमार या कमजोर हों, तो भूलकर भी कड़ी कसरत न करें। असक्त शरीर से भारी मेहनत लेने पर शक्ति क्षय होने के कारण भारी हानि हो सकती है।

(६) कसरत धीरे-धीरे, प्रसन्नचित होकर, दिलचस्पी के साथ उतनी ही करनी चाहिए जितनी सामर्थ्य हो। एक कसरत को बदलकर जब दूसरी करनी हो, तो बीच में थोड़ा विश्राम कर लेना चाहिए। जब थकान आने लगे, तो कसरत बंद कर देनी चाहिए।

(७) स्नान और व्यायाम में कम-से-कम आध घंटे का अंतर रहना चाहिए। व्यायाम के बाद स्नान करना अच्छा है। पर जिन्हें आदत हो वे स्नान के बाद भी व्यायाम कर सकते हैं।

(८) व्यायाम से पहले हलके हाथ से तेल की मालिश भी करनी चाहिए। बहुत जोर से घिस्से लगाने की जरूरत नहीं है। तेल चमड़ी में सूखता जाए, ऐसी मध्यम गति से मालिश करना ठीक है।

(९) व्यायाम के समय श्वास नाक से लेनी चाहिए और मुँह बंद रखना चाहिए।

(१०) व्यायाम की हर क्रिया के साथ इच्छाशक्ति का संयोग करना चाहिए। ऐसी मनोभावना करते जाना चाहिए कि कसरत से मेरे अंग-प्रत्यंग पुष्ट हो रहे हैं। दर्पण के सामने खड़े होकर अपने अंग-प्रत्यंगों को प्रसन्नतापूर्वक निहारना चाहिए और विश्वासपूर्वक ऐसी मान्यता को मन में मजबूत स्थान देते जाना चाहिए कि शरीर के अंग-प्रत्यंगों में जीवनीशक्ति पर्याप्त मात्रा में बढ़ रही है। इस प्रकार की भावना से आश्चर्यजनक और आशातीत लाभ होता है।

एक बात ध्यान रखने की है कि कसरत करने के उपरांत पाचन शक्ति बढ़ जाती है। व्यायाम की गरमी के कारण जठराग्नि तीव्र हो जाती है, जिससे भारी चीजें भी पच जाती हैं। इस अवसर से लाभ उठाने के लिए कसरत के बाद स्नान से निवृत्त होकर दूध, बादाम, मक्खन या भीगी हुई चने की दाल आदि बलवर्द्धक वस्तुएँ कलेवा की तरह थोड़ी मात्रा में खानी चाहिए। इस प्रकार के बलवर्द्धक पदार्थ आसानी से हजम होकर शरीर का पोषण करते हैं।

प्राणायाम

प्राणायाम की महत्ता

'प्राण' एक स्वतंत्र तत्त्व है, जिसे जीवनीशक्ति भी कह सकते हैं। मिट्टी, पानी, हवा, आकाश ये पाँच जड़ तत्त्व हैं, इनकी सहायता से संसार के विभिन्न दृश्य पदार्थों की रचना होती है, परंतु ऐसा न समझना चाहिए कि विश्व के मूलभूत पदार्थ इतने ही हैं। चैतन्य तत्त्वों की सत्ता इनसे पृथक है। विचारतत्त्व की चर्चा हम अपनी कई पुस्तकों में कर चुके हैं कि जो कुछ मनुष्य सोचता है, वह एक प्रकार की अदृश्य भाप के रूप में मस्तिष्क में से निकलकर उड़ता है और बादलों की तरह ईथर की तरंगों में फिरता रहता है और अपनी जाति के अन्य विचार जहाँ देखता है, वहाँ ही घनीभूत हो जाता है।

विचारतत्त्व के अतिरिक्त प्राणतत्त्व, बुद्धितत्त्व, आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व अन्य हैं। जैसे पाँच जड़ तत्त्व हैं, वैसे ही ये पाँच चैतन्य तत्त्व भी हैं। दृश्य जड़ पदार्थों का अस्तित्व जल, तेज, वायु आदि जड़ पंचतत्त्वों के कारण है, इसी प्रकार इस निर्जीव दुनिया में हलचल, गति चेतना, विकास के जो भी दृश्य दिखाई पड़ते हैं, उनका कर्तृत्व उपर्युक्त चैतन्य पंचतत्त्वों के ऊपर निर्भर है। किसी जीव की मृत्यु हो जाती है, तो कहते हैं कि इसका 'प्राण निकल गया।' यह 'प्राण' जड़ पंचतत्त्वों में से एक भी नहीं है, क्योंकि मुरदे के शरीर में वे पाँचों ही मौजूद हैं। आत्मा भी कहीं गया नहीं। हिंदू विज्ञान के अनुसार जीव तेरह दिन तक अपने शरीर श्मशान और घर के आस-पास ही भ्रमण करता है। कई बार बिलकुल मरे हुए व्यक्ति पुनः जी उठते हैं। इन सब प्रश्नों पर विचार करने से पता चलता है कि शरीर को आत्मा के रहने योग्य बनाए रहने की क्षमता एक स्वतंत्र तत्त्व में है और उसका नाम है 'प्राण'। इस प्राण की ही प्रेरणा से बीज उगते हैं, पौधे बढ़ते और हरे रहते हैं। इसे जीवनी-शक्ति भी कह सकते हैं, विश्व में जितना भी जीवन दिखाई दे रहा है, वह 'प्राणतत्त्व' के कारण ही है।

यह प्राण पंच जड़ तत्त्वों के साथ मिलकर उन्हें उपयोगी बनाता है। किन्हीं स्थानों का जलवायु विशेष स्वास्थ्यकर होता है, वहाँ उनमें प्राण का अधिक सम्मिलन पाया जाता है। जहाँ इसकी न्यूनता होती है, वहीं अस्वास्थ्यकर विकृति देखी जाती है। अमुक स्थानों का जलवायु अस्वास्थ्यकर है अर्थात वहाँ प्राण की न्यूनता है। गंगा के जल में प्राण की प्रचुरता है। जिस वायु में प्राण अधिक घुला होता है, उसे 'ऑक्सीजन' कहते हैं। इसी प्रकार उर्वरा भूमि में, सह्य तापमान में, निर्मल आकाश में वह अधिक परिमाण में पाया जाता है। 'ऑक्सीजन' को प्राणवायु कहा जाता है, इससे समझा जाता है कि यही 'प्राण' है, परंतु यथार्थ में ऐसी बात नहीं है। प्राण एक विश्वव्यापी स्वतंत्र चैतन्य तत्त्व है, जो वायु की ही तरह सर्वत्र पाया जाता है, वरन अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण वायु आदि में

भी घुला रहता है। यही प्राणतत्त्व जब किसी शरीर में से बहुत अधिक मात्रा में कम हो जाता है, तो उसमें आत्मा का रहना शक्य नहीं रहता, यही मृत्यु है।

बुद्धि एक स्वतंत्र तत्त्व है। विवेक, वेद, तत्त्वज्ञान, प्रज्ञा, द्यौ, मानसिक शक्ति आदि नामों से जिस अदृश्य चैतन्य सत्ता का बोध होता है, वह बुद्धि भी विश्वव्यापी और एक है। विभिन्न प्राणियों में इसकी न्यूनाधिक मात्रा देखी जाती है। संपूर्ण भूतों में एक ही आत्मा बैठा हुआ है, इसकी विस्तृत विवेचना गीता आदि सभी प्रमुख आध्यात्मिक ग्रंथों में की गई है। जीवों का उत्तरदायित्व सम्मिलित है, एक के पाप-पुण्य का दूसरे को भागी बनना पड़ता है। जीवों से, आत्माओं से जरा ऊँची और विशुद्ध सत्ता ब्रह्मसत्ता है जिसे ईश्वर कहते हैं, यह भी सर्वव्यापी एवं स्वतंत्र है। जड़ पंचतत्त्वों की भाँति इन चैतन्य पंचतत्त्वों की क्रियाशीलता अदृश्य जगत में दिखाई देती है। इन चैतन्य तत्त्वों का विस्तृत विवेचन हमें यहाँ नहीं करना है, इस समय तो हमें प्राणतत्त्व पर विचार करना है और देखना है कि इस जीवनीशक्ति को हम अधिक मात्रा में अपने अंदर किस प्रकार धारण कर सकते हैं।

भारतीय अध्यात्म विज्ञानवेत्ताओं ने बड़े प्रयत्न, अन्वेषण और अनुभव के उपरांत उस मार्ग को ढूँढ़ निकाला है, जिसके द्वारा उस विश्वव्यापी जीवनदात्री प्राणशक्ति को हम अपने अंदर प्रचुर मात्रा में भर सकते हैं और उसके प्रभाव से उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, चैतन्यता, स्फूर्ति, क्रियाशक्ति, सहन करने की क्षमता, मानसिक तीक्ष्णता आदि नाना प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं। इस मार्ग का नाम है—'प्राणायाम'। प्राणायाम साँस को खींचकर उसे अंदर रोके रहने और बाहर निकालने की एक विशेष क्रिया-पद्धति है। इस विधान के अनुसार प्राण को उसी प्रकार अंदर भरा जाता है जैसे साइकिल की पंप से ट्यूब में हवा भरी जाती है। यह पंप इस प्रकार का बना होता है कि हवा को भरता तो है, पर वापस नहीं खींचता। प्राणायाम की व्यवस्था भी इसी प्रकार की है। साधारण

श्वास-प्रश्वास क्रिया में वायु के साथ वह प्राण इसी प्रकार आता-जाता रहता है जैसे सड़क पर मुसाफिर चलते रहते हैं, किंतु प्राणायाम विधि के अनुसार जब श्वास-प्रश्वास क्रिया होती है, तो वायु में से प्राण को खींचकर खासतौर से उसे शरीर में स्थापित किया जाता है, जैसे कि धर्मशाला में यात्री को व्यवस्थापूर्वक टिकाया जाता है।

भारतीय योगशास्त्र षट्चक्रों में सूर्यचक्र को बहुत अधिक महत्त्व देता है। अब पाश्चात्य विज्ञान ने भी सूर्य ग्रंथि तंतुओं को केंद्र स्वीकार किया है और माना है कि मानव शरीर में प्रतिक्षण होती रहने वाली क्रिया प्रणाली का संचालन इसी के द्वारा होता है। कुछ वैज्ञानिकों ने इसे 'पेट का मस्तिष्क' नाम दिया है। यह सूर्य-चक्र 'सोलर प्लैक्सस' आमाशय के ऊपर, हृदय की धुकधुकी के ठीक पीछे मेरुदंड के दोनों और स्थित है, यह एक प्रकार की सफेद और भूरी गद्दी से बना हुआ होता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक शरीर की आंतरिक क्रिया विधि पर इसका अधिकार मानते हैं और कहते हैं कि भीतरी अंगों का उन्नति-अवनति का आधार यही केंद्र है। किंतु सच बात यह है कि यह खोज अभी अपूर्ण है। सूर्यचक्र का कार्य और महत्त्व उससे अनेक गुना अधिक है, जितना कि वे लोग मानते हैं। ऐसा देखा गया है कि इस केंद्र पर यदि जरा कड़ी चोट लग जाए, तो मनुष्य की तत्काल मृत्यु हो जाती है। योगशास्त्र इस केंद्र को प्राणकोश मानता है और कहता है कि यहीं से निकलकर एक प्रकार का मानवीय विद्युत-प्रवाह संपूर्ण नाड़ियों में प्रवाहित होता है। ओजस शक्ति इसी संस्थान में रहती है।

प्राणायाम द्वारा इस सूर्यचक्र की एक प्रकार की हलकी-हलकी मालिस होती है, जिससे उसमें गरमी, तेजी और उत्तेजना का संचार होता है और उसकी क्रियाशीलता बढ़ती है। प्राणायाम से फुफ्फुसों में वायु भरती है और वे फूलते हैं। यह फुलाव सूर्यचक्र की परिधि को स्पर्श करता है। बार-बार स्पर्श करने से जिस प्रकार कामसेवन अंगों में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम द्वारा फुफ्फुस का, सूर्यचक्र का स्पर्श होना, वहाँ एक सनसनी

उत्तेजना और हलचल पैदा करता है। यह उत्तेजना व्यर्थ नहीं जाती वरन् संबंधित सारे अंग-प्रत्यंगों को जीवन और बल प्रदान करती है, जिससे शारीरिक और मानसिक उन्नतियों का द्वार खुल जाता है।

मेरुदंड के दाएँ-बाएँ दोनों ओर नाड़ी-गुच्छकों की दो शृंखलाएँ चलती हैं। यह गुच्छक आपस में संबंधित हैं और इन्हीं से सिर, गले, छाती, पेट आदि के गुच्छक भी आकर शामिल हो गए हैं। अन्यान्य अनेक नाड़ी कणों का भी वहाँ जमघट है। इनका प्रथम विभाग जिसे 'मस्तिष्क मेरु विभाग' कहते हैं, शरीर के ज्ञान-तंतुओं से घनीभूत हो रहा है। इसी संस्थान से असंख्य बहुत ही बारीक भूरे तंतु निकलकर रुधिर नाड़ियों में फैल गए हैं और अपने अंदर बहने वाली विद्युत शक्ति से भीतरी शारीरिक अवयवों को संचालित किए रहते हैं।

ऊपर बताया जा चुका है कि मेरुदंड के दाएँ-बाएँ नाड़ी-गुच्छकों की दो प्रधान शृंखलाएँ चलती हैं, इन्हीं को योग की भाषा में इड़ा और पिंगला कहा गया है। रुधिर संचार, श्वास क्रिया, पाचन आदि प्रमुख कार्यों को सुसंचालित रखने की जिम्मेदारी उपर्युक्त नाड़ी-गुच्छकों के ऊपर प्रधान रूप से है। प्राणायाम साधना में इन इड़ा, पिंगला नाड़ियों को नियत विधि के अनुसार बलवान बनाया जाता है। जिससे उनसे संबंधित शरीर की सहानुभावी क्रिया के विकार दूर होकर आनंददायी स्वस्थता प्राप्त हो सके।

अत्यंत प्राचीनकाल से अध्यात्मवेत्ता पुरुष प्राणायाम के महत्त्व और उसके लाभों को अनुभव करते रहे हैं। तदनुसार समस्त भूमंडल के योगी लोग अपनी-अपनी विधि से इन क्रियाओं को करते रहे हैं। महाप्रभु ईसा मसीह अपने शिष्यों सहित एक पर्वत पर चढ़कर ईश्वर की प्रार्थना किया करते थे। कहा जाता है कि इस ऊँची चढ़ाई में आध्यात्मिक श्वास क्रियाओं का रहस्य छिपा हुआ था। बौद्ध धर्म में 'जजन' नामक प्राणायाम बहुत काल से चला आता है। प्रसिद्ध जापानी पुरोहित हकुइन जेंशी ने प्राणायाम का खूब विस्तार किया था। यूनान में प्लेरन से भी बहुत पहले इस विज्ञान की जानकारी का

पता चलता है। अन्यान्य देशों में भी किसी-न-किसी रूप में इस विद्या के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं।

योग साधन पाद के सूत्र ५२, ५३ में बताया गया है कि प्राणायाम से अविद्या का अंधकार दूर होकर ज्ञान की ज्योति प्रकट होती है और मन एकाग्र होने लगता है। ऐसी गाथाएँ भी सुनी जाती हैं कि प्राणायाम को वश में करके योगी लोग मृत्यु को जीत लेते हैं और जब तक चाहें, तब तक जीवित रह सकते हैं। प्राणशक्ति से अपने और दूसरों के रोगों को दूर करने का एक अलग विज्ञान है, जिसे हम अपनी 'प्राण चिकित्सा विज्ञान' पुस्तक में प्रकट कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अन्यान्य प्रकार के प्राणायाम से होने लाभ सुने और देखे जाते हैं। यह लाभ कभी-कभी इतने विचित्र होते हैं कि उन पर आश्चर्य करना पड़ता है। इन पंक्तियों में उन अद्‌भुत और आश्चर्यजनक घटनाओं की चर्चा न करके इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्राणायाम से शरीर की सूक्ष्म क्रियापद्धति के ऊपर अदृश्य रूप से ऐसे विज्ञानसम्मत प्रभाव पड़ते हैं जिनके कारण रक्त संचार, नाड़ी-संचालन, पाचन क्रिया, स्नायविक दृढ़ता, गूढ़ निद्रा, स्फूर्ति एवं मानसिक विकास के चिह्न स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं एवं स्वस्थता, बलशीलता, प्रसन्नता, उत्साह तथा परिश्रम की योग्यता बढ़ती है। आत्मोन्नति, चित्त की एकाग्रता, स्थिरता, दृढ़ता आदि मानसिक गुणों की मात्रा में प्राण-साधना के साथ-साथ ही वृद्धि होती है। इन लाभों पर विचार किया जाए, तो प्रतीत होता है कि प्राणायाम आत्मोन्नति की एक महत्त्वपूर्ण साधना है।

आध्यात्मिक साधना के लिए पद्मासन

पहले बताया जा चुका है कि आसनों के दो प्रयोजन हैं। एक व्यायाम, दूसरा आत्मसाधना के लिए सुखपूर्वक बैठना। साधना में चित्त को निमग्न कर देने के लिए स्नायुओं को ढीला करने की आवश्यकता होती है, जब तक मांसपेशियाँ ढीली न होंगी, चित्त शांत अवस्था को न पहुँच सकेगा। निद्रा तभी

आती है, जब पेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं, यदि वे अकड़ी रहीं, तो निद्रा का आना असंभव है। अनिद्रा रोग का प्रधान कारण पेशियों का तनाव है, निद्रा लाने वाली दवाओं में पेशियाँ को ढीला करने का ही गुण होता है। तात्पर्य यह है कि किसी साधना में तन्मयतापूर्वक चित्त लगाने से पूर्व पेशियों को ढीला करने की आवश्यकता है, जो इस तैयारी में जितना ही आगे बढ़ जाएगा, उसे मानसिक अभ्यासों में उतनी ही सहायता मिलेगी। शारीरिक क्रियाओं को सुसंचालित रखने में मस्तिष्क का बहुत बड़ा भाग काम करता रहता है। खासतौर से लघु मस्तिष्क का जो कि ध्यान और धारणा का प्रधान उपकरण है।

एक स्थान पर जबकि शक्तियाँ व्यय हो रही हैं, तो दूसरे स्थान पर लगाने के लिए बहुत कम अंश बचेगा। यही कारण है कि जब शारीरिक उत्तेजना बढ़ रही होती है, कोई ऐसा दिमागी काम नहीं हो सकता, जिसमें एकाग्रता की आवश्यकता है। संध्या-पूजा, भजन, जप, ध्यान आदि कार्यों के लिए एकांत, शांतिपूर्ण स्थान तलाश किए जाते हैं, ताकि मस्तिष्क को दूसरी तरफ न लगना पड़े। इसी प्रकार सुखकर आसन पर बैठने का विधान है, ताकि शरीर सुविधापूर्ण स्थिति में रहे और मानसिक विक्षेप उत्पन्न न होने पाए। आसन का अर्थ बिछौना भी है। यह बिछौना नरम, कोमल, गुदगुदा, स्वच्छ, सुखकर ही होना चाहिए। साथ ही बैठने का तरीका भी ऐसा हो जिसमें शरीर को किसी प्रकार की अड़चन न पड़े। वह तरीका ऐसा होना चाहिए, जिसमें देह पूर्ण आराम एवं विश्राम अनुभव करे और पेशियाँ आसानी से ढीली हो जाएँ।

ध्यानावस्थित योगियों के बहुत-से चित्र हमारे देखने में आते हैं। गौतम बुद्ध की मूर्तियाँ और तसवीरें पद्मासन पर विराजमान हैं। योगेश्वर शंकर भी पद्मासन पर बैठे दिखाई देते हैं। इन प्रतिमाओं के नेत्रों की ओर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि वे अधखुले से तंद्रावस्था में हैं, जिसे योग निद्रा कहते हैं। ध्यान के

लिए यह बहुत अच्छा आसन है। पालथी मारकर दोनों हाथ गोदी में रख लेने चाहिए, मेरुदंड को सीधा रखकर शरीर को ढीला छोड़ देना चाहिए। चित्त को बाहर से हटाकर अंतर्मुखी बनाना चाहिए और नेत्रों को अधखुले रखकर ऐसी मुद्रा बनानी चाहिए, मानों तंद्रावस्था में चले गए हैं। इस स्थिति में शरीर को रखकर ध्यान करने में बहुत आसानी होती है और इच्छित विषय में खूब चित्त लगता है।

शवासन

शवासन शब्द का अर्थ है—लाश। मृत व्यक्ति की लाश जिस प्रकार पड़ी रहती है, उसी प्रकार निश्चेष्ट होकर शरीर को ढीला छोड़ देना शवासन कहा जाता है। समाधि अवस्था में पेशियाँ अत्यंत शिथिल हो जाती हैं और मन इतना लय हो जाता है कि देह का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। चित्त देह चेतना में से हटकर ध्यान चेतना में पूर्ण रूप से चला जाता है। शवासन द्वारा उसी समाधि अवस्था की आंशिक रूप से प्राप्ति हो जाती है। जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तो उसका देह से बिलकुल संबंध विच्छेद हो जाता है, लाश अलग पड़ी रहती है और जीव अलग उड़ जाता है। शवासन में इसी प्रकार की साधना करनी पड़ती है, यह पेशियाँ ढीली करने का सबसे उत्तम तरीका है। चित्त को जितना ही शरीर से दूर हटाया जाता है, उतना ही वे निर्जीव और शिथिल होने लगती हैं। शिथिलता इस आसन का प्रधान गुण होने से शवासन का दूसरा नाम शिथिलासन रखा गया है।

समतल भूमि पर चटाई बिछाकर पीठ के बल सीधे लेट जाना चाहिए। सिर के नीचे एक पतली-सी साफी या तकिया रखा जा सकता है। यदि मक्खी-मच्छरों की अधिकता हो तो मलमल का पतला कपड़ा ऊपर डाल लेना चाहिए। शरीर को इस प्रकार ढीला छोड़ना चाहिए मानो वह बिलकुल निर्जीव हो गया है। मन-ही-मन ऐसी भावनाएँ करनी चाहिए कि "मेरा प्राण शरीर से बिलकुल अलग हो रहा है।" यह भावना जितनी ही दृढ़ होती जाती है, उतनी

ही निश्चेष्टता बढ़ती जाती है। तनाव कम होने के कारण हाथ, पाँव, गरदन इधर-उधर ढुलक जाते हैं। इस आसन से कुछ देर पड़े रहने पर चित्त को बहुत शांति मिलती है और मन वश में होने लगता है।

पाश्चात्य अध्यात्म विद्या विशारदों ने इस शवासन या शिथिलासन पर बहुत जोर दिया है और उसके लाभों की बहुत बड़ी विरुदावली वर्णन की है। डॉक्टर युक्लिन अपने आत्मविद्या सीखने वाले शिष्यों को सबसे पहले शिथिलासन का अभ्यास कराते हैं। उनका कहना है कि किसी भी मानसिक साधना के लिए पेशियों को शिथिल करने की अनिवार्य आवश्यकता है, बिना इसके चित्त का एक स्थान पर ठहरना नहीं हो सकता और जब तक मानसिक स्थिरता न हो, तब तक इस दिशा में आशाजनक फल नहीं मिल सकता। डॉक्टर पी. ओ. वैनिट शिकागो के प्रसिद्ध मैस्मेरिजम तत्त्ववेता हैं, उन्होंने मैस्मेरिज्म सीखने वालों को प्रारंभिक साधन शिथिलासन ही बताया है। पाश्चात्य विद्वान इस आसन को जमीन पर लेटकर करना अच्छा नहीं समझते। उनका अनुभव है कि आरामकुरसी पर लेटकर करने से सुविधा रहती है। सुविधा का ध्यान रखते हुए यदि आरामकुरसी पर इसका अभ्यास किया जाए, तो कुछ बुरा नहीं है।

पेरिस के 'मैन्टल हीलिंग इंस्टीट्यूट' में मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति के अनेक रोगियों की चिकित्सा होती है। वहाँ रोगी भरती कर लिए जाते हैं और उन्हें शिथिलासन करने का आदेश दिया जाता है। जब एक-दो दिन में वह इस क्रिया को ठीक तरह करना सीख लेता है, तब उस पर प्रयोग आरंभ किए जाते हैं। उपर्युक्त संस्था की संचालिका श्रीमती पाक्सले का कथन है कि बिलकुल अजनवी के ऊपर मानसिक प्रभाव डालने में हमें जितना परिश्रम करना पड़ता है, उससे एक-तिहाई में ही उन बीमारों को प्रभावित किया जा सकता है, जो शिथिलासन के अच्छे अभ्यासी हो गए हैं। स्वयं डॉक्टर मैस्मर भी शिथिलीकरण की उपयोगिता पर बहुत जोर

दिया करते थे और इस आसन की सफलता को मैस्मेरिज्म की आधी सफलता बताया करते थे।

शिथिलीकरण क्रिया आत्मिक साधनाओं के लिए अच्छा आरंभ तो है ही, इसके अतिरिक्त थकान मिटाने का उसमें अद्‌भुत गुण है। जब शरीर या मन थककर चूर हो रहा हो, तो थोड़ी देर के लिए आरामकुरसी पर लेटकर शिथिलासन कर डालें। जरा-सी देर के लिए पेशियाँ ढीली कर देने से एक नवीन चेतना और स्फूर्ति का संचार होता है और थकावट सहज ही उतर जाती है। रावर्ट क्लाइव लार्ड नेपोलियन के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे युद्धक्षेत्र में कई-कई दिन-रात बिना सोए बिता देते थे। आश्चर्य होता है कि किस प्रकार वे अपने स्वास्थ्य को ठीक रखते होंगे? उपर्युक्त दोनों महानुभावों के निद्रा जीतने के संबंध में कई पुस्तकों में चर्चा मिलती है। नेपोलियन के एक साथी का कथन है कि युद्ध-कार्य में दिन-रात व्यस्त रहते हुए भी नेपोलियन घोड़े की पीठ पर कुछ देर सुस्ता लेता था और फिर चैतन्य हो जाता था। रावर्ट क्लाइव भी बंदूकों का सहारा लेकर इसी प्रकार सुस्ता लिया करता था। अनेक अनुभवियों ने इस बात को प्रमाणित किया है कि शरीर को शिथिल करने की क्रिया द्वारा आश्चर्यजनक रीति से थकान मिट जाती है।

पद्मासन धार्मिक विधि-विधानों, पूजा-पाठ, जप आदि के लिए ठीक है। ध्यान करने के लिए, आत्मचिंतन के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए और अपने ऊपर किसी अन्य द्वारा आध्यात्मिक प्रभाव ग्रहण करने के लिए शिथिलासन उत्तम है। जिन्हें आरामकुरसी की सुविधा हो, वे उसका उपयोग करें, जिन्हें न हो वे चटाई पर लेटकर इसे कर सकते हैं। पद्मासन और शिथिलासन करीब-करीब एक से हैं और एक ही आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

पद्मासन के कई प्रकार देखने में आते हैं। इनमें से साधारण रीति से पालथी मारकर हाथों को घुटनों पर रखकर बैठने की क्रिया

पद्मासन है। दूसरे प्रकार व्यायाम संबंधी हैं। दोनों पैरों को दोनों जांघों के ऊपर रखना, फिर दोनों हाथों को पीठ के पीछे ले जाकर दाहिने हाथ से बाएँ पैर का अँगूठा पकड़ना और बाएँ हाथ से दाहिने पैर का अँगूठा पकड़ना—ये भी पद्मासन के नाम से प्रसिद्ध है, परंतु इसे ध्यान या आत्मसाधना के काम में नहीं लाया जा सकता क्योंकि कई अंगों पर इससे बहुत अधिक तनाव पड़ता है और अधिक देर आसानी के साथ इस दशा में नहीं बैठा जा सकता। इस प्रकार की क्रिया तो व्यायाम की ही आवश्यकता पूर्ति कर सकती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में पद्मासन के तीन प्रकारों की चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त जो अनेक भेद-उपभेद हैं, उनको अनावश्यक समझकर यहाँ चर्चा नहीं की जा रही है। स्मरण रखना चाहिए कि मेरुदंड सीधा रखकर, पालथी मारकर, हाथों को घुटनों पर रखकर, अधखुले नेत्रों से शांतिपूर्वक बैठने का साधारण सुखासन, संध्या, अनुष्ठान, कर्मकांड, जप, प्राणायाम आदि के योग्य पद्मासन है, इसे सिद्धासन भी कहते हैं। शवासन या शिथिलासन, जिनमें शरीर को बिलकुल निश्चेष्ट छोड़ दिया जाता है, उच्च कोटि की आध्यात्मिक साधनाओं के लिए उपयुक्त है। ध्यान, आत्मदर्शन, समाधि, मैस्मेरिज्म, शक्तिपात, योग निद्रा, तन्मयता आदि के लिए पद्मासन की यह प्रक्रिया सर्वोत्तम है। हाथों को पीठ पीछे ले जाकर जांघों पर रखे हुए पाँव के पंजे को पकड़ना यह व्यायाम की एक आवश्यकता पूरी करने वाला पद्मासन है, इसे बद्ध पद्मासन भी कहते हैं। इन तीनों का यथा अवसर सुविधानुसार उपयोग करना चाहिए। संपूर्ण आसनों में पद्मासन की उपयोगिता आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत बढ़ी-चढ़ी है। साधना करने के लिए बैठने में आसन की आवश्यकता सबसे पहले पड़ती है, इसलिए उसकी जानकारी भी पाठकों को आरंभ में ही प्राप्त कर लेनी चाहिए।

प्राणायाम संबंधी कुछ जानकारियाँ

छाती से पसली के भीतर दोनों ओर दो फेफड़े (फुफ्फुस) फैले हुए हैं। श्वास-प्रश्वास क्रिया के यह प्रधान अंग हैं। इनकी

बनावट शहद की मक्खियाँ के छत्ते की तरह है। हवा भरने के लिए इनमें छोटे-छोटे कोठे बने हुए हैं। इन वायु मंदिरों की संख्या १६ से १८ करोड़ के लगभग होती है। यदि इन कोठरियों को खोलकर उनकी दीवारें पृथ्वी पर बिछा दी जा सकें, तो इनका क्षेत्रफल १३० से १५० वर्ग गज होगा। छाती की कोठरी में दोनों फेंफड़े अलग-अलग हैं, पर जहाँ पसलियों का जुड़ाव है, उसी स्थान पर हृदय, रुधिर और स्वर की बड़ी नाड़ियाँ इन्हें आपस में जोड़ती हैं और रक्तोपवाहक धमनियाँ तथा रक्तोपवाहक शिराएँ फेंफड़ों को हृदय से संबंधित करती हैं। यह फेंफड़े एक बहुत ही पतली किंतु मजबूत झिल्ली के अंदर रखे हुए हैं, जिसे अंग्रेजी में 'हेल्यूरल सैक' कहते हैं। जब साँस इन फेंफड़ों में भरती है, तो ये फैलते हैं और जब साँस बाहर निकलती है, तो ये सिकुड़ जाते हैं।

आप जानते ही होंगे कि हृदय दिन-रात रक्त को फेंकता रहता है। जब हृदय द्वारा रक्त फेंका जाता है, तो वह धमनियों और फिर पतली धमनियों में होता हुआ शरीर के हर एक भाग में पहुँचता है और फिर दूसरे रास्ते से पतली शिराओं में होता हुआ मोटी शिराओं में आकर हृदय में वापस पहुँच जाता है। आरंभ में जब यह रक्त शरीर में घूमने लगता है तो शरीर में हर घड़ी उत्पन्न होते रहने वाले विष उसमें मिल जाते हैं। शहर की गंदी नालियों की भाँति काला-नीला होकर यह रक्त हृदय की दाहिनी कोठरी (Auricle) में जमा होता है, यहाँ से उसे एक दूसरी कोठरी (Ventricle) में होकर शुद्ध होने के लिए वह बालों से भी बारीक नालियों द्वारा फेंफड़ों की उन हवा वाली लाखों कोठरियों में पहुँचता है, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

साँस द्वारा फेंफड़ों में जो शुद्ध हवा पहुँचती है, वह इस विष को अपने साथ बाहर उड़ा लाती है। चौबीस घंटे में मनुष्य के शरीर से साँस द्वारा इतना विष बाहर निकलता है कि उससे १२ हाथियों की मृत्यु हो सकती है। यदि साफ हवा पर्याप्त मात्रा में फेंफड़ों में न

पहुँचे तो शरीर प्राणवायु के जीवनदायक लाभों से वंचित तो रहेगा ही, साथ ही अशुद्ध रक्त की गंदगी भी ठीक तरह शुद्ध न हो सकेगी और परिणाम यह होगा कि वह थोड़ी-थोड़ी अशुद्धता धीरे-धीरे जमा होकर स्वास्थ्य को बिगाड़ देगी और नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करेगी।

इसलिए गहरी और पूरी साँस लेने की आवश्यकता है, जिससे वायु फेंफड़े के हर भाग में जाकर संपूर्ण वायु मंदिरों में से रक्त की सफाई कर सके। अधूरी और उथली साँस लेने से कुछ थोड़े-से वायु मंदिरों की सफाई हो पाती है क्योंकि उथली साँस का दबाव इतना नहीं होता कि वह हर एक कोठे तक पहुँच सके, जब हवा वहाँ तक पहुँचेगी ही नहीं, तो सफाई किस प्रकार होगी ? साँस का संपर्क होने पर रक्त की अशुद्धता (कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस) बाहर निकल जाती है और साँस का प्राण (ऑक्सीजन) रक्त में घुल जाती है। यह प्राणशक्ति उस शुद्ध हुए रक्त के दूसरे दौरे के साथ शरीर के अंग-प्रत्यंगों में पहुँचकर उन्हें ताजगी और स्फूर्ति प्रदान करती है। शुद्ध रुधिर में एक-चौथाई भाग ऑक्सीजन का होता है। यदि इसमें न्यूनता हो जाए, तो उसका प्रभाव पाचन क्रिया पर अनिवार्य रूप से पड़ता है, ऐसे व्यक्तियों की जठराग्नि मंद होने लगती है।

इन सब प्रक्रियाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि हमें पूरी और गहरी साँस लेने की आवश्यकता है, जिससे रक्त की सफाई अच्छी तरह होकर अशुद्धता शेष न रहने पाए और शुद्ध हुए रक्त में पर्याप्त ऑक्सीजन मिल जाए, जिससे अंग-प्रत्यंगों में ताजगी एवं स्फूर्ति पहुँचती रहे और पाचन शक्ति में निर्बलता न आने पाए। जठराग्नि मंद होने से अन्य अंगों में शिथिलता आने लगती है और वे अपने काम को अधूरा एवं दोषपूर्ण छोड़ते हैं। यह क्रम यदि कुछ समय जारी रहे, तो जीवनयात्रा में नाना प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं और विविध भाँति के रोगों का सामना करना पड़ सकता है।

अधूरी साँस लेने वालों के फेंफड़े का बहुत-सा भाग निकम्मा पड़ा रहता है। जिन मकानों की सफाई नहीं होती, उनमें गंदगी, मकड़ी, मच्छर, छिपकली, कीड़े-मकोड़े आदि का जमघट होने लगता है। इसी प्रकार फेंफड़ों के जिन वायुकोष्ठों में साँस की वायु नहीं पहुँचती, उनमें क्षय, खाँसी, जुकाम, उरक्षत, कफ, दमा आदि के रोग कीट जड़ जमा लेते हैं। धीरे-धीरे वहाँ वे निर्बाध रीति से पलते रहते हैं और भीतर-ही-भीतर अपना इतना आधिपत्य जमा लेते हैं कि फिर उनका निकाल बाहर करना कठिन या असंभव हो जाता है।

प्राणायाम विज्ञान का सबसे पहला और आरंभिक पाठ यह है कि हमें पूरी और गहरी साँस लेनी चाहिए। यह आदत डालने का प्रयत्न करना चाहिए कि सदैव इस प्रकार साँस ली जाए कि वायु से पूरे फेंफड़े भर जाएँ। यह कार्य झटके से या उतावली में नहीं होना चाहिए। धीरे-धीरे इस प्रकार पूरी साँस खींचनी चाहिए कि छाती भरपूर चौड़ी हो जाए और फिर उसी क्रम से धीरे-धीरे वायु को बाहर निकाल देना चाहिए। यह रीति फेंफड़ों को स्वस्थ रखने वाली, रक्त को शुद्ध रखने वाली, शरीर के अंग-प्रत्यंगों को चैतन्यता देने वाली, पाचन शक्ति ठीक करने बनाए रखने वाली है, इसलिए आरोग्य और दीर्घ जीवन देने वाली भी है।

छाती का कमजोर और कम चौड़ा होना स्वास्थ्य के लिए एक खतरनाक अभिशाप है, जिसकी ओर हर व्यक्ति को जागरूक होने की आवश्यकता है। जापान के प्रसिद्ध डॉक्टर शोजाबुरी ओटेव ने अपनी पुस्तक "दी साइंस एंड आर्ट ऑफ डीप ब्रीदिंग इज ए प्रोफिलैक्टिक एण्ड थेराप्यूटिक एजेंट इनकंजप्शन" नामक पुस्तक में असंख्य प्रमाणों के साथ यह सिद्ध किया है कि तपेदिक का प्रधान कारण फेंफड़ों का कमजोर होना है। उपर्युक्त डॉक्टर साहब ने वैक्टिरियो लौजिकल इंस्टीट्यूट, वेगुली सैनेटोरियम, नेशनल सेनेटोरियम चैरिटी मेडीकल कॉलेज आदि विख्यात अस्पतालों के प्रमुख पदों पर रहकर जो प्रामाणिक अनुभव एकत्रित किए

हैं, उससे यह भली प्रकार प्रकट होता है कि अधूरी साँस लेने से जिन व्यक्तियों ने अपनी छाती को निर्बल बना लिया है, वे संक्रामक रोगों के शिकार होकर अकसर अकाल मृत्यु के ग्रास बनते हैं और जिन्हें गहरा एवं पूरा साँस लेने की आदत है, वे अन्य कठिनाइयों के होते हुए भी इतनी शक्ति रखते हैं कि कठिन रोगों से बहुत समय तक युद्ध करते रहें एवं उन पर विजय प्राप्त कर सकें।

शरीर विज्ञान पर नूतन प्रकाश डालने वाले यूरोप के ख्यातिनामा डॉक्टर बर्नर मेकफेडन ने अपनी पुस्तकों में गहरा साँस लेने की आवश्यकता पर अत्यधिक जोर दिया है और स्वस्थता से पूरी साँस लेने का बहुत गहरा संबंध बताया है। जबकि अन्य डॉक्टर प्राणायाम के अद्भुत शारीरिक लाभों से अपरिचित थे, तब आज से करीब २०० वर्ष पूर्व एक जर्मन पंडित इमैनुएल केंट ने अपनी पुस्तक में घोषित किया था कि साँस लेने की प्रक्रिया में सुधार कर लेने से कठिन रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। क्षय रोग के विशेषज्ञों ने रोगियों को प्राणायाम करना अनिवार्य रखा है। अमेरिका के योगी रामाचरक ने 'साइंस ऑफ ब्रीथ' पुस्तक लिखकर अपने देश की जनता को प्राणायाम की उपयोगिता भली प्रकार समझाई है। उनके विचारों से अंग्रेजीभाषी लोगों का ध्यान प्राणायाम की ओर विशेष रूप खिंचा है और जगह-जगह श्वास-प्रश्वास क्रियाएँ सिखाने वाली संस्थाओं का जन्म हो रहा है।

पूरी साँस लेने का अभ्यास डालने से छाती की चौड़ाई बढ़ती है। फेंफड़ों की मजबूती और वजन में वृद्धि होती है, हृदय की कमजोरी में सुधार होकर रक्त-संचार की प्रक्रिया में एक चैतन्यता दिखाई देने लगती है। पाठकों को श्वास विज्ञान के इस तथ्य को गंभीरतापूर्वक विचारना चाहिए और अविलंब पूरी और गहरी साँस लेने की आदत डालने का प्रयत्न आरंभ कर देना चाहिए। कुछ दिन श्वास क्रिया पर ध्यान रखने से और भूल सुधारते रहने से यह आदत भले प्रकार पड़ जाती है।

प्राणायाम विज्ञान की दूसर शिक्षा 'नाक से साँस लेना' है। यद्यपि मुँह से भी साँस ली जा सकती है, पर वह उतनी उपयोगी कदापि नहीं हो सकती जितनी कि नाक से लेने पर होती है। एक बार एक जंगी जहाज के यात्रियों में चेचक बड़े उग्र रूप से फैली। डॉक्टरों ने इनकी विशेष सावधानी से जाँच करते रहने का प्रयत्न किया। मृतकों के बारे में उनकी रिपोर्ट थी कि यह लोग मुँह से साँस लेते थे। उस जहाज में एक भी मनुष्य ऐसा न मरा जिसे नाक से श्वास लेने की आदत थी। जुकाम और सरदी के रोगों के बारे में भी डाक्टरी जाँच का यही निष्कर्ष है कि मुँह खोलकर साँस लेने से इनका प्रकोप विशेष रूप से होता है और भी अनेक छोटे-बड़े रोग इसी बुरी आदत के कारण होते देखे गए हैं।

नाक से फेंफड़ों तक जो हवा पहुँचाने वाली नाड़ी गई है, उसकी रचना इस प्रकार हुई है कि वायु का उचित रूप से संशोधन परिमार्जन करके भीतर पहुँचाएँ। नासिका के छिद्रों में छोटे-छोटे बाल होते हैं, यह एक प्रकार की छलनी है, जिनमें धूल, गंदगी के अणु अटके रह जाते हैं और छनी हुई वायु भीतर जाती है। जब आप नासिका के छिद्रों में उँगली डालकर उनकी सफाई करते हैं तो उनमें से कुछ मैल निकलता है। यह मैल वह कचरा है, जो वायु के छानने से जमा हुआ है। नासिका में एक प्रकार का तरल पदार्थ स्रावित होता रहता है। बालों में अटकने के सिवाय जो कचरा बच रहता है, वह इस स्राव में चिपक जाता है। वायु का इतना संशोधन नासिका के छिद्रों में हो जाने के उपरांत वह आगे चलती है। श्वास नली जो फेफड़ों तक मस्तिष्क में होती हुई गई है, काफी लंबी है, इतनी लंबाई में यात्रा करते हुए वायु का तापमान सह्य हो जाता है। यदि वह गरम हुई, तो श्वास नली के ताप के बराबर ठंढी हो जाती है और यदि ठंढी हुई तो गरम हो जाती है। इस प्रकार फेंफड़ों तक पहुँचते-पहुँचते, वह सब प्रकार सह्य और संशोधित हो जाता है, किंतु यदि मुँह से साँस ली जाए, तो परिणाम बिलकुल दूसरे ही प्रकार का होता है। मुँह में नासिका की तरह बाल नहीं हैं, जो वायु

को छानें। दूसरे मुँह का छिद्र इतना बड़ा है कि उसमें वायु का गर्द गुबार बिना रुकावट के चला जा सकता है। तीसरे मुँह से फेफड़ों की दूरी बहुत कम है, इसलिए वायु की सरदी-गरमी में भी विशेष परिवर्तन नहीं होने पाता। इस प्रकार बिना छनी, गर्द-गुबार युक्त, सरद-गरम हवा मुँह के द्वारा जब फेफड़ों में पहुँचती है, तो उन्हें हानि पहुँचती है और बीमारियों की उत्पत्ति करती है। देखा गया है कि जो लोग रात में मुँह से साँस लेते हैं, सबेरे उनका मुँह सूखा हुआ, दाह युक्त, कड़ुआ और बदबूदार होता है। रोगियों को यह लत हो, तो उनके स्वस्थ होने में अनावश्यक देरी लग जाती है।

योगियों की प्राणायाम के अभ्यासियों को यह कड़ी ताकीद होती है कि वे सदा नाक से साँस लिया करें। यदि नासिका भाग में कुछ रुकावट हो, जिसके कारण मुँह से साँस लेने के लिए बाध्य होना पड़ता हो, तो नासिका रंध्रों की सफाई कर लेनी चाहिए। यदा-कदा इस सफाई को अभ्यास की तरह कर लिया जाया करे, तो इस प्रकार की रुकावट उत्पन्न ही नहीं होने पाती।

हठयोग के अंतर्गत षट्कर्मों में 'नेति' क्रिया का प्रमुख स्थान है। नासिका की सफाई का यह साधन है। सूत की डोरी द्वारा, जल द्वारा, घृत द्वारा रंध्रों की सफाई करके वायु-मार्ग में जमा हुआ मैल साफ किया जाता है, ताकि साँस लेने में कोई विघ्न उपस्थित न हो। सूत की डोरी से नाक की सफाई करने का तरीका विशेष अनुभवी लोगों की देख-रेख में ही किया जा सकता है, अन्यथा भयानक खतरा उपस्थित हो सकता है। असावधानी से डोरी यदि नासा रंध्र में अनुचित रीति से धँस जाए तो मृत्यु तक की नौबत आ सकती है। इसलिए जल नेति का तरीका बरतने की ही हम अपने पाठकों को सलाह देते हैं।

प्रात:काल शौच आदि से निवृत्त होकर अच्छी तरह कुल्ला-दातौन करनी चाहिए और नासिका के छेदों में उँगली के सहारे खूब अच्छी तरह सफाई कर डालनी चाहिए। तदुपरांत छना हुआ, स्वच्छ,

निर्मल, ताजा जल कटोरी या अंजलि में लेकर धीरे-धीरे नासिका द्वारा ऊपर खींचना चाहिए। अभ्यास के आरंभ में कुछ दिन थोड़ी ही दूर तक पानी खींचना चाहिए और फिर नाक से ही लौटा देना चाहिए। फिर क्रमशः अधिक दूरी तक पानी खींचने का अभ्यास करते चलना चाहिए। यहाँ तक कि नाक द्वारा खींचा हुआ पानी मुँह में होकर निकल जाए। इस जल नेति को सप्ताह में एक-दो बार कर लेने से नासिका से वायु-मार्ग की सफाई होती रहती है और श्वास संबंधी रुकावटें दूर हो जाती हैं। यह स्वस्थ दशा के लिए है। यदि रोगग्रस्त दशा हो तो स्वच्छ पिघले हुए गौ घृत की नेति करनी चाहिए। कभी-कभी 'नक छिकनी' बूटी के रस आदि को सूँघकर छींकें ले लेनी चाहिए। इस प्रकार श्वास-मार्ग की रुकावटें दूर होती रहती हैं और नासिका द्वारा साँस लेने की आदत डालना सरल हो जाता है।

संगीत से फेंफड़े बहुत मजबूत होते हैं। गायन में जिन्हें रुचि होती है, उन्हें छाती संबंधी रोग बहुत कम होते देखे गए हैं। अत्यधिक गाने से या अनुचित अवस्था में अविधिपूर्वक गाने से बीमारियाँ हो सकती हैं, परंतु साधारणतः संगीत की गणना फेंफड़े को मजबूत बनाने वाले अभ्यासों में है। कंठ, हृदय, पसली, आमाशय, आँत, यकृत आदि सभी धड़ के अंतर्गत रहने वाले अंगों पर संगीत से अच्छा व्यायाम होता है। यदि अच्छे बाजे के साथ ध्वनिपूर्वक गाया-बजाया जाए, तो एक प्रकार की विद्युत तरंगें उत्पन्न होकर स्नायु-तंतुओं को तरंगित करती हैं, जिससे श्वास संचालन-क्रिया में विशेष रूप से सहायता मिलती है और मंद एवं शिथिल गति से कार्य करने वाले अंगों में गतिशीलता तथा स्फूर्ति का आविर्भाव होता है। जिन्हें गाना-बजाना आता है, उन्हें भोजन के पश्चात कम-से-कम दो-तीन घंटे बचाकर सुविधानुसार अपना अभ्यास करना चाहिए। जो बजा न सकते हों, उन्हें केवल गाना ही चाहिए। सुविधानुसार यदि वाद्य गायन सुनने का अवसर मिले तो उससे भी लाभ उठाना चाहिए

क्योंकि संगीत से उत्पन्न होने वाली विद्युत लहरें सुनने वालों को भी प्रभावित करती हैं। प्रात:-सायं गायन, वाद्य तथा नृत्य के साथ संकीर्तन करने की धार्मिक प्रथा का स्वास्थ्य से बड़ा घना संबंध है। संकीर्तन में सम्मिलित होने वालों का अनायास ही फेंफड़े संबंधी व्यायाम हो जाता है और बहुत अंशों में प्राणायाम का लाभ मिलता है।

व्यायाम और प्राणायाम के सम्मिलित अभ्यास

नीचे कुछ ऐसे प्राणायाम दिए जाते हैं, जिनमें आसन और प्राणायाम दोनों की आवश्यकता पूरी होती है अर्थात व्यायाम और श्वास-प्रश्वास क्रिया दोनों साथ-साथ हैं।

अभ्यास-१

(१) सीधे खड़े हो जाओ। बाहें नीचे बगलों में लटका लो।

(२) भुजाओं को कड़ी रखकर धीरे-धीरे ऊपर उठाते जाओ जब तक कि सिर के ऊपर जाकर दोनों हाथ एक-दूसरे को छू न जाएँ। साथ ही नासिका द्वारा वायु खींचते जाओ।

(३) हाथों को कुछ क्षण ऊपर ही उसी अवस्था में रोक रखो और साथ ही साँस को भी रोके रहो।

(४) हाथों को धीरे-धीरे नीचे लाओ और साथ ही साँस को खाली करते जाओ। हाथ बगल में आने तक पूरी साँस खाली हो जाए।

अभ्यास-२

(१) सीधे खड़े हो जाओ। दोनों हाथों को नाक की सीध में ठीक सामने कर लो। हाथ कड़े तने हुए इस प्रकार रहें मानो हाथ जोड़ रहे हों।

(२) दोनों हाथों को कानों की सीध में फैलाओ। सीने को जरा आगे की ओर तानते हुए हाथों को पीठ की तरफ थोड़ा पीछे की ओर ले जाने की कोशिश करो, साथ ही नाक द्वारा साँस खींचते जाओ।

(३) कुछ देर हाथों को उसी दशा में तना हुआ रोक रखो और साँस भी रोके रहो।

(४) हाथों को फिर पहली स्थिति में लाओ जैसे हाथ जोड़े हुए थे, साथ साँस को खाली करो।

अभ्यास-३

(१) सीधे खड़े हो जाओ। दोनों हाथों को सिर के ऊपर ले जाओ और साँस खींच लो।

(२) तने हुए हाथों में लचक न आने पाए, उन्हें कड़े और सीधे रखते हुए धीरे-धीरे नीचे की ओर झुको और पैरों की उँगलियों को छूने की कोशिश करो। पैरों के घुटने भी लचकने न पाएँ। यदि इस प्रकार इतना न झुका जा सके कि पैरों की उँगलियाँ छू जाएँ, तो ज्यादा-से-ज्यादा जहाँ तक झुक सकते हो, वहीं तक झुको। साथ ही साँस खाली करते जाओ।

(३) कुछ क्षण इसी दशा में ठहरो और साँस रोको।

(४) हाथों को ज्यों-के-त्यों सीधे और कड़े रखते हुए ऊपर को उठो और धीरे-धीरे हाथों को सिर के ऊपर तक ले जाओ। साथ ही साँस भरते जाओ।

अभ्यास-४

(१) सीधे खड़े हो जाओ। दोनों हाथों को कमर पर रख लो।

(२) पैर जहाँ-के-तहाँ अपनी जगह पर अड़े रहें और कमर से ऊपर का धड़ जितना पीछे की ओर झुक सके, तना हुआ रखते हुए झुकाओ, साथ ही साँस खींचते जाओ।

(३) कुछ देर इसी दशा में ठहरो और साँस रोको।

(४) अब धड़ को पूर्व अवस्था में वापस लाकर सीधे हो जाओ और साँस खाली कर दो।

अभ्यास-५

टहलने की कसरत

(१) फौजी कवायद या ड्रिल करने में शरीर को सीधा रखकर जिस प्रकार चलते हैं, उस तरह एक से कदम उठाते

हुए मध्यम गति से टहलो और मन-ही-मन कदमों की गिनती करते रहो।

(२) कदमों की संख्या जितनी देर में १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ हो उतनी देर साँस खींचो।

(३) १, २, ३, ४ की गिनती के कदमों तक साँस रोको।

(४) फिर १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ कदमों में साँस खाली कर दो।

यदि कमजोरी के कारण ८ तक की संख्या ज्यादा मालूम हो तो ६ कर सकते है। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते हुए इस गिनती को आगे बढ़ाना चाहिए। आरंभ में यदि ८ से शुरू किया है, तो आगे चलकर १०, १२ आदि क्रम से बढ़ते चलना चहिए। सभी कसरतों में यही बात है। आरंभ की अपेक्षा धीरे-धीरे अभ्यास का दबाव बढ़ाते हुए उसे कठिन करते चलना चाहिए, परंतु ध्यान रहे सामर्थ्य से अधिक न बढ़ना चाहिए, एक अभ्यास को कई-कई बार शक्ति के अनुसार दोहराना चाहिए।

प्राणायाम की कुछ विधियाँ

प्राणायाम करने के लिए प्रात:काल का समय अच्छा है। किसी स्वच्छ, खुले, एकांत एवं शांत स्थान में आसन बिछाकर बैठना चाहिए। सुखकर रीति से पालथी मारकर सादा पद्मासन से इस प्रकार बैठना चाहिए कि छाती, गला और मस्तिष्क तीनों एक सीध में रहें। मेरुदंड सीधा रखना प्राणायाम के समय आवश्यक है, ताकि रीढ़ के साथ रहने वाली इड़ा और पिंगला नाड़ियों में होकर निर्बाध गति से प्राण का आवागमन हो सके।

प्राणायाम को तीन भागों में विभक्त किया गया है—(१) रेचक, (२) कुंभक, (३) पूरक। कुंभक के दो भेद हैं—(अ) बाह्य कुंभक, (ब) आंतरिक कुंभक। रेचक वायु बाहर निकालने को, आभ्यांतरिक कुंभक भीतर वायु रोकने को, बाह्य कुंभक बाहर वायु रोकने को, पूरक साँस खींचने को कहते हैं। अब कुछ प्राणायामों के अभ्यास नीचे बताए गए हैं।

१. प्रारंभिक अभ्यासियों के लिए साधारण प्राणायाम

(१) छाती में भरी हुई सारी वायु नाक के रास्ते धीरे-धीरे बाहर निकालो।

(२) जितनी देर में वायु निकाली है, उसके एक-चौथाई समय तक साँस को बाहर ही रोक रखो।

(३) फिर धीरे-धीरे साँस लेना शुरू करो और पेट तक फेंफड़ों को पूरी तरह वायु से भर लो।

(४) पहले जितनी देर साँस को बाहर रोक रखा था अब उतनी ही देर वायु को भीतर रोक रखो।

(५) इस अभ्यास को पहले दिन कम-से-कम ७ बार करो और फिर नित्य एक-दो की संख्या में बढ़ाते जाओ।

(६) उपर्युक्त प्रत्येक क्रिया के साथ मन-ही-मन 'ॐ' का जप करते रहें। एक बात विशेष ध्यान रखने की है कि कुंभकों को उतनी ही देर करना चाहिए जितनी देर आसानी से साँस रोकी जा सके। जबरदस्ती अधिक समय तक कुंभक करने से लाभ के बदले हानि की आशंका रहती है।

२. फुफ्फुस के हर भाग में वायु पहुँचाने के लिए प्राणायाम

(१) नासिका द्वारा धीरे-धीरे वायु खींचकर इच्छाशक्ति द्वारा पहले उसे फेफड़े के निचले भाग में भरो। इससे पेट का ऊपर वाला भाग भी कुछ फूल जाएगा।

(२) इसके पश्चात् उसी साँस को फेफड़ों के मध्य भाग में भरो। इससे छाती का बीच वाला भाग कुछ फैलेगा।

(३) साँस के तीसरे भाग से फेफड़ों का ऊपरी भाग भरो। इससे छाती का ऊपरी भाग फैलता है।

(४) अब थोड़ी देर वायु को भीतर रोक रखो और भावना करो कि फेफड़ों के समस्त कोशों में साँस भली प्रकार भरपूर मात्रा में भरी हुई है।

(५) फिर धीरे-धीरे वायु को बाहर निकाल दो।

३. पेट और आँतों तक प्राण पहुँचाने के लिए प्राणायाम

(१) वायु को खींचते हुए सीधे पेट तक ले जाओ, जिससे पेट भली भाँति फूल जाए।

(२) बिना कुंभक किए ही वायु को बाहर निकालो और पेट जहाँ तक पिचक सकता हो, पिचकाते जाओ।

(३) बिना भीतर बाहर का कोई कुंभक किए लगातार इस क्रिया को कई बार करो।

(४) अभ्यास के समय नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखो।

(५) थक जाने पर अंत में एक कुंभक करके अभ्यास को समाप्त कर दो।

४. शक्ति बढ़ाने के लिए प्राणायाम

(१) ठोढ़ी को कंठ कूप (हँसली की पसलियों के बीच में जो गड्ढा है) से चिपकाओ और थोड़ी देर कुंभक करो।

(२) बाएँ नथुने को अँगूठे से दबाकर बंद करो और दाहिने नथुने से वायु खींचो।

(३) अँगूठे से दाहिने नथुने को दबाकर बंद करो और बाएँ नथुने से वायु को निकालो।

(४) दूसरे प्राणायाम में इसका उलटा करो अर्थात् बाएँ से वायु खींचो और दाहिने से निकाल दो।

(५) हर प्राणायाम के बाद उपर्युक्त बदलने का क्रम रखो अर्थात एक बार दाहिने से खींचना, बाएँ से छोड़ना, दूसरी बार बाएँ से खींचना, दाएँ से छोड़ना, तीसरी बार फिर दाहिने से खींचना, बाएँ से छोड़ना।

५. मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिए प्राणायाम

(१) दाहिने पैर की ऐड़ी, बाएँ पाँव की जाँघ पर और बाएँ पैर की ऐड़ी गुदा पर रखें। ठोढ़ी को कंठ कूप से चिपकाओ और नेत्र बंद करो।

(२) गहरा और लंबा साँस खींचो।

(३) थोड़ी देर भीतर रोककर वायु को बाहर निकाल दो।

६. शरीर में उष्णता बढ़ाने के लिए प्राणायाम

(१) पहले साधारण रीति से धीरे-धीरे पूरक और रेचक करो।

(२) इस अभ्यास में कुंभक की आवश्यकता नहीं।

(३) क्रमश: श्वास-प्रश्वास क्रिया की तेजी बढ़ाते जाओ, यहाँ तक कि साँस लुहार की धौंकनी की तरह चलने लगे।

७. ब्रह्मचर्य पालन के प्राणायाम

(१) इस प्रकार बैठो कि बाएँ पैर की ऐड़ी सीवन (गुदा और अंडकोषों के बीच का स्थान) पर रहे और दाहिने पैर की ऐड़ी मूत्रेंद्रिय के ऊपर की जड़ पर रहे।

(२) आसानी के लिए चूतड़ों के नीचे पतला तकिया लगाओ।

(३) जो स्वर चल रहा हो, उससे साँस खींचो, दूसरे को अँगूठे से बंद कर लो।

(४) थोड़ी देर कुंभक करके जिससे साँस खींची थी, उस नथुने को अँगूठे से बंद करके दूसरे से निकाल दो।

(५) साँस खींचते समय गुदा को खूब सिकोड़ो, कुंभक के समय उसे सिकुड़ी हुई ही रुकी रहने दो और रेचक के साथ खूब उसे धीरे-धीरे ढीला करो।

८. चित्त की एकाग्रता के लिए प्राणायाम

(१) शवासन-शिथिलासन से लेट जाओ। शरीर को बिलकुल ढीला कर दो।

(२) कानों में रूई लगाकर नेत्र बंद कर लो, जिससे बाहर के शब्द सुनाई न पड़ें। दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर रखो।

(३) साधारण रीति से गहरे साँस लेते और छोड़ते रहो, बीच में थोड़ा कुंभक भी करते रहो।

(४) फिर नेत्रों की पुतलियों को ऊपर चढ़ाकर दोनों भवों के मध्य-त्रिकुटी में दिव्य तेज का ध्यान करो।

(५) कुछ निद्रा-सी आए तो आने दो, उसे तोड़ो मत।

(६) इस अवस्था में 'अनहद' शब्द सुनाई पड़ते हैं और ज्योति स्वरूप परमात्मा के दर्शन होने से चित्त की एकाग्रता दिन-दिन बढ़ती जाती है।

९. थकान मिटाने के लिए प्राणायाम

(१) साधारण रीति से पूरक करो और वैसा ही थोड़ा कुंभक करो।

(२) रेचक मुँह से करो। मुँह को सिकोड़कर इस प्रकार हवा बाहर फेंको जैसे सीटी बजाते हैं।

(३) पूरी वायु एक बार में ही बाहर न निकाल दो, वरन रुक-रुककर तीन बार में बाहर निकालो।

उपर्युक्त नौ प्राणायाम इस पुस्तक में पाठकों के लिए पर्याप्त है। यों तो अनेक प्रकार के प्राणायाम विभिन्न योग्यता वाले व्यक्तियों के लिए हैं, परंतु सर्वसुलभ प्राणायाम जिनमें किसी प्रकार का खतरा नहीं है और जो इस पुस्तक के आधार पर आसानी से किए जा सकते हैं, ऊपर लिख दिए गए हैं। साधकों को इनका नित्य अभ्यास करना चाहिए। एक प्राणायाम को जितनी बार करना हो, उतनी बार कर चुकने के उपरांत जब दूसरा करें तो बदलाव के समय थोड़ा सुस्ता लेना चाहिए और थकान मिटाने वाला नौवाँ प्राणायाम एक-दो बार कर लेना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि इन सबका नित्य अभ्यास किया जाए। अपनी रुचि और आवश्यकता के तीन-चार प्राणायाम चुन लेने चाहिए और उन्हीं का अभ्यास करते रहना चाहिए। व्यायाम और प्राणायाम का समय यदि साथ-साथ ही रखना हो तो दोनों के बीच में इतना अंतर रहना चाहिए कि शरीर की उत्तेजना और उष्णता शांत हो जाए।